

शाबाशी

भारत के एक अग्रणी प्रबंधन संस्थान में, अगले 10 से 15 वर्षों के लिए एक योजना तैयार करने के लिए परिप्रेक्ष्य योजना (Perspective Planning) ग्रुप अभ्यास कर रहा था। एक दिन चाय के क्लब में, कुछ युवा जिज्ञासु संकाय सदस्यों ने वहां बैठे वरिष्ठ सहकर्मियों से संस्थान के शैक्षिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए प्रबंधन करने के बारे में अपने अनुभव / विचार साझा करने के लिए कहा। वरिष्ठ सहकर्मियों में से एक, प्रोफेसर चिदंबरम, ने निम्नलिखित कहानी सुनाई।

"लगभग २५ वर्ष पूर्व मैं यह समझने के लिए इस संस्थान में शामिल हुआ कि एक राष्ट्रीय स्तर की संस्था कैसे बनाई जाती है। मैंने भारत के एक अग्रणी प्रबंधन संस्थान में अध्ययन किया था, जो पहले से ही स्थापित किया था। वैसे ही दो अन्य संस्थान भी थे। उस समय मेरा शैक्षिक संस्थानों में एक शिक्षक के रूप में अपने पूर्ण भविष्य बिताने में बहुत रुचि नहीं थी, इस लिए मैं यहां प्रतिनियुक्ति पर आया था। यहां आने पर मैंने देखा कि इस तरह के शिक्षा संस्थानों में भी उद्योग जगत के हर कार्य है; विपणन (प्लेसमेंट), वित्त (धन प्राप्त करना और उनका उपयोग करना), मानव संसाधन प्रबंधन (संकाय और कर्मचारी), संचालन (पीजीपी और अन्य कार्यक्रम चलाना), परियोजना प्रबंधन आदि हैं। यहां आप किसी भी एक या अधिक कार्यों में, उद्योग जगत ज्यादा दबाव के बिना, संलग्न हो सकते हैं। दो साल बाद मैंने स्थायी नियुक्ति के लिए सहमति दी।

मैं पीजीपी (MBA) के प्रथम बैच को तीन सत्रों में, तीन अलग-अलग विषयों को पढ़ा रहा था; बिजनेस पॉलिसी (जिसे अब स्ट्रैटेजिक मैनेजमेंट कहा जाता है), प्रबंधन नियंत्रण प्रणाली (मैनेजमेंट कंट्रोल सिस्टम) (जिसे आम तौर पर वित्त लेखांकन क्षेत्र के शिक्षक पढ़ते हैं) और प्रबंधन में परिवर्तन और रचनात्मकता (सामान्यतः यह विषय व्यवहार विज्ञान क्षेत्र के शिक्षकों द्वारा पढ़ाया जाता है)। मुझे प्लेसमेंट की जिम्मेदारी भी दी गई थी। हमारे निर्देशक हमें समय-समय पर मिलते थे। एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मुझे किसी भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है? मैंने अपनी समस्या व्यक्त की "जब तक मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं जो सिखाता हूँ, वह किया जा सकता है, मुझे पढ़ना मुश्किल लगता है", निर्देशक मुस्कराये और सिर हिला कर पूछा इन दोनों चीजों में क्या सम्बन्ध? मैं अवाक् था। क्या विश्वास के बिना भी विषय पढ़ाये जा सकते हैं? "डॉ चिदंबरम ने कहा।

संकाय परिषद ने उन्हें अपने पहले पाठ्यक्रम के लिए मामले सामग्री विकसित करने के लिए कहा। चूंकि लखनऊ में कई कंपनियां नहीं थीं, उन्होंने स्कूटर्स इंडिया लिंडेड पर एक 3-पार्ट केस स्टडी विकसित किया था। प्रबंधन के अपने डॉक्टरेट पाठ्यक्रम में पढ़ाए विषयों का विवेचन करने और अपने विषय का साहित्य समीक्षा करने पर वह दंग थे क्योंकि उन्हें कहीं भी स्कूटर्स इंडिया कंपनी जैसी स्थिति की व्याख्या नहीं मिली। "दुनिया में किसी भी कंपनी को सभी क्षेत्रों में कुप्रबंधन के बावजूद करीब 16 वर्षों तक घाटे में चलते हुए मैंने नहीं देखा/सुना था" उन्होंने कहा।

संस्थान वेतन के लिए भी केंद्र सरकार पर निर्भर कर रहा था। "दूसरे वर्ष मैं एक बार कक्षा में चिल्ला पड़ा कि हम भी स्कूटर्स इंडिया की राह पर जा रहे हैं" उन्होंने कहा।

"मुझे पता नहीं था कि इस समस्या को कैसे खत्म किया जाए, लेकिन इतना आश्वस्त था कि कोई रास्ता तो होना चाहिए। क्या जो विषय मैं पढ़ता हूँ उसमें इसका कोई हल नहीं है? सौभाग्य से मुझे "संस्थान के भविष्य के दिशा निर्देश समिति (Committee on Future Directions) " (जो संकाय सदस्यों की एक बैठक में चाय के

लिए इंतजार करते समय एक संकाय सदस्य द्वारा तत्काल सुझाव पर बनाई गई थी) के सदस्य के रूप में एक रिपोर्ट तैयार करने का अवसर मिला। यह एक 84 पेज की रिपोर्ट थी, जिसमें 12 पृष्ठ "रणनीति तैयार करने" और 72 पृष्ठ "रणनीति के कार्यान्वयन" जिसमें विषय पर थे। "बहुत भारी" होने के नाते सदस्यों को इसे पढ़ने लायक नहीं समझा, क्योंकि कुछ सुपर विशेषज्ञ सदस्यों ने महसूस किया कि "परिप्रेक्ष्य योजना 1-2 पृष्ठों से अधिक नहीं होनी चाहिए"। हालांकि मैंने व्यवसाय नीति के गंभीर छात्र के रूप में वह रिपोर्ट तैयार की थी, और मुझे विश्वास था कि उसमें दिए सुझाव प्रभावी तरीके से काम करेंगे। "

"दूसरे वर्ष के अंत तक मुझे अपोलो हॉस्पिटल एंटरप्राइज लिमिटेड पर एक केस लिखना पड़ा। आवश्यक जानकारी संग्रह करके लौटने पर मैं आश्वस्त हो गया था कि हमें सरकारी खजाने पर निर्भरता को कम करने के लिए बढ़ना चाहिए, "यदि अपोलो अपने आप से यह सब कर सकता है, तो हम ऐसा क्यों नहीं कर सकते। आगे बढ़ने के लिए बुनियादी चुनौतियाँ सभी संस्थानों के लिए सामान हैं। जब मैंने पाया कि 30 जुलाई, 1988 को मंत्रालय से चेक प्राप्त करने में देरी के कारण हमारे वेतन खाते में पैसा नहीं आया, तब मुझे लगा कि समय खत्म हो रहा है "डॉ चिदंबरम ने कहा।

संस्थान शैशव अवस्था में था, लगभग चार साल पुराना। बहुत कम संकाय सदस्य थे और छोटे, उधार / किराए की बुनियादी सुविधाएं/ बुनियादी ढांचा तैयार करने के लिए सरकारी धन आने में विलम्ब होता था। विभिन्न विषयों के संकाय सदस्यों की सांख्या असंतुलित होने के कारण कुछ पर कार्य भार बहुत अधिक था तो कुछ पर बहुत कम (जो उन्हें झगड़ों और कलह में संलग्न होने के लिए काफी समय देता था)।

"एक नए निदेशक ने अगस्त 1988 में बागडोर संभाली। मेरे कठोर शब्दों "यह संस्थान पीजीपी (MBA) में दाखिला 30 से 100 छात्र क्यों नहीं कर सकता है?" को झेलने के लिए उनकी सहनशीलता की सराहना करता हूँ। ईमानदारी से कहता हूँ कि अगर कोई संकाय सदस्य बार-बार मुझसे ऐसा पीड़ादायक सवाल पूछता तो मैं चिढ़ जाता। पर उन्होंने इसे सहन किया। लेकिन जनवरी 1989 की समाप्ति के अंत में, उसके धैर्य ने भी जवाब दे दिया और उन्होंने एक संकाय परिषद की बैठक में कहा कि "मैं इन्हे (चिदंबरम को) पीजीपी अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करने जा रहा हूँ, क्योंकि यही एकमात्र तरीका बचा है इन्हे चुप कराने का", प्रोफेसर चिदंबरम हँसते हुए बोले।

अगले कुछ दिनों के भीतर, नए पीजीपी अध्यक्ष की नियुक्ति के लिए कार्यालय का आदेश जारी हो गया, जो आमतौर पर अप्रैल के मध्य में किया जाता था। 1 जुलाई, 1989 को, पीजीपी के 5 वें बैच में 105 छात्र थे, सामान्य 30-35 की बजाय।

इसके लिए कई काम पूरे करने थे, वह भी मात्र ४-५ माह के समय में। कक्षा के कमरे, (विशेष छोटी) कुर्सियों को बढ़ाए गए बैच आकार को समायोजित करने के लिए डिज़ाइन कराना, छात्रावासों, भोजन की सुविधा, कंप्यूटर केंद्र, अध्यापकों की व्यवस्था इत्यादि। लेकिन अंत में सब कुछ ठीक ठाक निपट गया। अगले वर्ष मात्र 25 दिनों में एक 120 छात्रों की क्षमता वाले व्याख्यान कक्ष का निर्माण जीवन का अति उपयोगी अनुभव है। बड़े हुए PGP बैच के बावजूद गर्मियों और नौकरी, दोनों के प्लेसमेंट (summer and job placement) उम्मीद से अच्छे हुए।

उपरोक्त कार्यों के अलावा कई अन्य परिवर्तन भी लाये गए। PGP की फीस शुल्क का तर्कसंगतरूप से रुपये ५००० प्रति वर्ष से बढ़ा कर रुपये १०६५० की गई, जिस से चालू (रनिंग) लागत कम से कम ५०% वसूल हो सके और सरकार पर गैर-योजना अनुदान निर्भरता कम हो और यह सुनिश्चित हो कि जब PGP बैच का आकार 180 पहुँच जाये तो तो संस्थान को मंत्रालय से किसी भी गैर-योजना अनुदान की आवश्यकता न हो। ऐसा बाद में मंत्रालय के अन्यसंस्थानों को भी करना पड़ा। निर्धारित पुस्तकों को कम नहीं किया गया था लेकिन लौटाने आधार पर दिया गया ताकि लागत 2 साल में

एक साल के बजाये दो साल में निकले और छात्रों पर भार न बढे। पीजीपी हॉस्टल की लागत को 800 रुपए प्रति माह से घटा 300 रुपए प्रति माह कर दिया गया था और छात्रों से वास्तविक लागत वसूल कि गई न कि १५० रुपये प्रति माह, जो पहले वसूल कि जाती थी। दीक्षांत व्यय के खर्च को मंत्रालय की अनुदान के माध्यम से वित्तपोषण के बजाय दीक्षांत समारोह शुल्क की शुरुआत की गई थी। के PGP की क्षमता विस्तार के लिए आवश्यक संसाधनों का विस्तार करने / जुटाने के लिए, नियोक्ता (employer) कंपनियों- के साथ परामर्श करके) संस्थान में पहली बार प्लेसमेंट शुल्क शुरू किया गया, जिसे बाद में अन्य, स्थापित संस्थान भी करने लगे।

माता-पिता और कंपनियों के अलावा, अन्य हितधारकों के योगदान में भी वृद्धि हुई थी। संकाय परिषद ने स्वमेव यह संकल्प किया कि हर संकाय सदस्य हर साल कम से कम 2-3 पाठ्यक्रम पढ़ाएगा, जो बाद में अन्य आईआईएम में भी एक नियम बन गया। कर्मचारियों की लागत को कम करने के लिए पीजीपी में 3 गुना छात्र वृद्धि के बावजूद कर्मचारियों में कोई वृद्धि नहीं हुई थी। सप्ताह में 5 दिन के कक्षाओं बजाये, पीजीपी में 6 दिन की कक्षाएं शुरू की गईं, जिस से समयबद्धन (class schedules) को तर्कसंगत बनाने और पीजीपी छात्रों को पढ़ने और खेलने का पर्याप्त समय मिल सके। कुछ नए अध्यापक भी संकाय सदस्यों में शामिल हो गए, जिनमें से कुछ बाद में तारे की तरह चमके।

यद्यपि PGP बैच का आकार बढ़ गया था, किन्तु अब पंजीकरण के समय ही पुस्तकालय और पहचान पत्र जारी किए जाने लगे जो कि पहले कई सप्ताह ले लेते थे। पंजीकरण शीघ्र करने के लिए पंजीकरण फॉर्म 16 पृष्ठों से घटाकर 4 पृष्ठों तक कम किया गया। पीजीपी के अगले बैच से मैनुअल भी मिलने लगे। प्रवेश के आमंत्रण स्वीकृत के लिए फॉर्मेटेड स्वीकार्य फॉर्म शुरू किए गए थे और प्रतीक्षा सूची में रखा जाने की स्वीकृति भी शुरू की गई थी। स्वीकृति शुल्क को रुपए 100/- से रु 500/ बढ़ाया गया। पहली बार चिपकाए गए नामों के साथ साइक्लोस्टिलेड प्रवेश के आमंत्रण पत्र के बजाय कंप्यूटर द्वारा प्रिंटेड व्यक्तिगत आमंत्रण पत्र को भेजा गया था।

कई और अप्रत्याशित चीजें भी हुईं। पाठ्यक्रम की सामग्री साइक्लोइस्टाइलिंग के बजाये ज़ेरॉक्सिंग से होने लगी, जो पठन सामग्री की लागत और प्रोग्राम ऑफिस का भार कम करने के उद्देश्य से किया गया था। कंप्यूटर पीजीपी कार्यालय में और बाद में अन्य कार्यालयों में उपयोग में लाये जाने लगे। डेटा एंट्री ऑपरेटर लेने के बजाय, सचिवीय स्टाफ को टाइपिंग के बजाय कंप्यूटर पर कार्य करने के लिए प्रोत्साहन शुरू किये गए। संकाय सदस्यों को अगले साल से निजी कंप्यूटर भी मिले। दो साल बाद जब PGP बैच पास हो कर निकला, तो अधिकांश कर्मचारियों को पदोन्नति या विशेष वेतन वृद्धि मिली। सुधार के साथ-साथ, संकाय के बीच झगड़े और कलह भी कम हो गए।

बढ़ी हुई PGP बैच के आकार से प्रसन्न मंत्रालय ने परिसर के निर्माण को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन जारी किया और संस्थान PGP की सातवी बैच से 120 छात्रों के बैच के आकार के लिए नए बनाए गए परिसर में पहुँच गया। यह सब बहुत संतुष्टिदायक था, हालांकि दिन में 18-20 घंटों तक काम करने से मेरी चयापचय प्रणाली (metabolic system) गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गयी थी और वर्ष के अंत तक मैं निष्क्रिय हो कर बिस्तर से लग लाया था।

एक दिन थोड़े परेशान निदेशक ने डॉ चिदंबरम को फोन किया "आप मेरे लिए समस्या पैदा कर रहे हैं। क्या मैंने आपको नहीं कहा था कि आप PGP प्रवेश में वृद्धि नहीं करें? अब आप ही एजी ऑफिस (AG Office) के ऑडिटर (जो 5 साल के व्यापक लेखापरीक्षा के लिए आये थे) के प्रश्नों का उत्तर दें, जो कह रहे हैं कि हमारा

प्लेसमेंट ठीक है, हमने 5 वें साल में छात्रों संख्या 30 से बढ़ाकर सफलतापूर्वक 100 से अधिक कर दी है, और पूछते हैं कि हम इसे पहले क्यों नहीं किया?

अपने अथक प्रयासों की प्रशंसा के इस तरीके से डॉ चिदंबरम आहत भी हुए और क्रुद्ध भी। लेकिन दूसरे ही क्षण उन्हें विचार आया कि आखिर १०-१५ सालों से भी पहले स्थापित लब्धप्रतिष्ठित संस्थान PGP प्रवेश में एक सीट की भी बढ़ोतरी क्यों नहीं कर पा रहे हैं?

DO NOT COPY